अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीरामावतारकथावर्णनम्

अग्निरुवाच

रामायणमहं वक्ष्ये नारदेनोदितं पुरा। वाल्मीकये यथा तद्वत्पठितं भुक्तिमुक्तिदम्।।१।।

नारद उवाच

विष्णुनाभ्यब्जजो ब्रह्मा मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः। मरीचेः कश्यपस्तस्मात्सूर्यो वैवस्वतो मनुः।।२।।
ततस्तस्मात्तथेक्ष्वाकुस्तस्य वंशे ककुत्स्थकः। ककुत्स्थस्य रघुस्तस्मादजो दशरथस्ततः।।३।।
रावणादेर्वधार्थाय चतुर्धाभूत्स्वयं हरिः। राज्ञो दशरथाद्रामः कौसल्यायां बभूव ह।।४।।
कैकेय्यां भरतः पुत्रः सुमित्रायां च लक्ष्मणः। शत्रुघ्नश्चर्ष्यशृङ्गेण तासु सन्दत्तपायसात्।।५।।
प्राशिताद्यज्ञसंसिद्धाद्रामाद्याश्च समाः पितुः। यज्ञविघ्नविनाशाय विश्वामित्रार्थितो नृपः।।६।।
रामं सम्प्रेषयामास लक्ष्मणं मुनिना सह। रामो गतोऽस्त्रशस्त्राणि शिक्षितस्ताडकान्तकृत्।।७।।
मारीचं मानवास्त्रेण मोहितं दूरतोऽनयत्। सुबाहुं यज्ञहन्तारं सबलं चावधीद्बली।।८।।
सिद्धाश्रमनिवासी च विश्वामित्रादिभिः सह। गतः क्रतुं मैथिलस्य द्रष्टुं चापं सहानुजः।।९।।

अध्याय–५

रामायण-बालकाण्ड की कथा

श्री अग्नि देव ने कहा कि–हे वसिष्ठजी! अधुना मैं ठीक उसी तरह रामायण का वर्णन करने जा रहा हूँ, जिस प्रकार प्राचीन काल में देवर्षि नारदजी ने ब्रह्मर्षि वाल्मीकिजी को सुनाया था। इसका पाठ भोग और मोक्ष–दोनों को देने वाला है।।१।।

देवर्षि नारद ने कहा कि–हे वाल्मीकिजी! भगवान् श्रीहरि विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्माजी के पुत्र हैं मरीचि। मरीचि से कश्यप, कश्यप से सूर्य और सूर्य से वैवस्वतमनु का जन्म हुआ। तत्पश्चात् वैवस्वतमनु से इक्ष्वाकु की उत्पत्ति हुई। इक्ष्वाकु के वंश में ककुत्स्थ नामक राजा हुए। ककुत्स्थ के रघु, रघु के अज और अज के पुत्र दशरथ हुए। उन राजा दशरथ से दशानन रावण आदि राक्षसों का वध करने के लिये साक्षात् भगवान् श्रीहरि विष्णु चार रूपों में प्रकट हुए। उनकी बड़ी रानी कौसल्या के गर्भ से श्रीरामचन्द्रजी उत्पन्न हुये। कैकेयी से भरत और सुमित्रा से लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न का जन्म हुआ। महर्षि ऋष्यशृङ्ग ने उन तीनों रानियों को यज्ञसिद्ध चरु दिये थे, जिन्हें खाने से इन चारों कुमारों का आविर्भाव हुआ। कौशल्यानन्दन दाशरथि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी आदि सभी भाई अपने पिता के ही समान पराक्रमी थे। एक समय मुनिवर विश्वामित्र ने अपने यज्ञ में विघ्न डालने वाले राक्षसों का विनाश करने के लिए राजा दशरथ से याचना की कि आप अपने पुत्र श्रीरामचन्द्रजी को मेरे साथ भेज दें। तत्पश्चात् राजा ने मुनि के साथ कौशल्यानन्दन दाशरथि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण को भेज दिया। कौशल्यानन्दन दाशरथि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने वहाँ जाकर मुनि से अस्त्र–शस्त्रों की शिक्षा पायी और ताड़का नाम वाली राक्षसी का वध किया। तत्पश्चात् उन बलवान् वीर ने मारीच नामक राक्षस को मानवास्त्र से मोहित करके दूर फेंक दिया और

शतानन्दनिमित्तेन विश्वामित्रप्रभावतः। रामश्च प्रथितो राज्ञा समुनिः पूजितः क्रतौ।।१०।।
धनुरापूरयामास लीलया स बभञ्ज तत्। वीर्यशुल्कां स जनकः सीतां कन्यां त्वयोनिजाम्।।११।।
ददौ रामाय, रामोऽपि पित्रादौ हि समागते। उपयेमे जानकीं तामूर्मिलां लक्ष्मणस्तदा।।१२।।
श्रुतकीर्तिर्माण्डवी च कुशध्वजसुते तथा। जनकस्यानुजस्यैते शत्रुघ्नभरतावुभौ।।१३।।
कन्ये द्वे तूपयेमाते, जनकेन सुपूजितः। रामोऽगात्स वसिष्ठाद्यैर्जामदग्न्यं विजित्य च।।१४।।
अयोध्यां भरतोऽप्यागात्सशत्रुघ्नो युधाजितः।।१५।।

।।इत्यादिमहापुराणे भगवान् वेदव्यासकृत श्रीविष्णुवामपादस्वरूपे श्रीअग्निमहापुराणान्तर्गते श्रीमद्रामायणे बालकाण्डे पञ्चमोऽध्यायः।।५।।



यज्ञविघातक राक्षस सुबाहु को दल–बल सहित मार डाला। इसके बाद वे कुछ कालतक मुनि के सिद्धाश्रम में ही रहना चाहिये। तत्पश्चात् विश्वामित्र आदि महर्षियों के साथ लक्ष्मण सहित कौशल्यानन्दन दाशरथि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मिथिला नरेश का धनुष–यज्ञ देखने के लिये गये।।२–९।।

अपनी माता अहल्या के उद्धार की वार्ता सुनकर संतुष्ट हुए शतानन्दजी ने निमित्त–कारण बनकर कौशल्यानन्दन दाशरथि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से विश्वामित्र मुनि के प्रभाव का वर्णन किया। राजा जनक ने अपने यज्ञ में मुनियों सहित कौशल्यानन्दन दाशरथि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का पूजन किया। कौशल्यानन्दन दाशरथि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने धनुष को चढ़ा दिया और उसको अनायास ही तोड़ डाला। उसके बाद महाराज जनक ने अपनी अयोनिजा कन्या सीता को, जिसके विवाह के लिये पराक्रम ही शुल्क निश्चित किया गया था, कौशल्यानन्दन दाशरथि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को समर्पित किया। श्रीरामचन्द्रजी ने भी अपने पिता राजा दशरथ आदि गुरुजनों के मिथिला में पधारने पर सभी के सामने सीता का विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया। उस समय लक्ष्मण ने भी मिथिलेश–कन्या उर्मिला को अपनी पत्नी बनाया। राजा जनक के छोटे भाई कुशध्वज थे। उनकी दो कन्याएँ थीं–श्रुतकीर्ति और माण्डवी।

इनमें माण्डवी के साथ भरत ने और श्रुतकीर्ति के साथ शत्रुघ्न ने विवाह किया। उसके बाद राजा जनक से भलीभाँति पूजित हो कौशल्यानन्दन दाशरथि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने वसिष्ठ आदि महर्षियों के साथ वहाँ से प्रस्थान किया। मार्ग में जमदग्निनन्दन भगवान् परशुराम को जीतकर वे अयोध्या पहुँचे। वहाँ जाने पर भरत और शत्रुघ्न अपने मामा राजा युधाजित् की राजधानी को चले गये।।१०–१५।।

।।इस प्रकार महापुराणों में श्रेष्ठ श्रीविष्णुवामपादस्वरूप कृष्णद्वैपायन भगवान् व्यासकृत अग्निमहापुराणान्तर्गत आगत विषयों का विवेचन सम्बन्धी पाँचवाँ अध्याय डॉ. सुरकान्त झा द्वारा सुसम्पन्न हुआ।।५।।



अथ षष्ठोऽध्यायः

रामायणेऽयोध्याकाण्डम्

नारद उवाच

भरतेऽथ गते रामः पित्रादीनभ्यपूजयत्। राजा दशरथो राममुवाच शृणु राघव॥१॥
गुणानुरागाद्राज्ये त्वं प्रजाभिरभिषेचितः। मनसाहं प्रभाते ते यौवराज्यं ददामि ह॥२॥
रात्रौ त्वं सीतया सार्धं संयतः सुव्रतो भव। राज्ञश्च मन्त्रिणश्चाष्टौ सवसिष्ठस्तथाऽब्रुवन्॥३॥
दृष्टिर्जयन्तो विजयः सिद्धार्थो राज्यर्धनः। अशोको धर्मपालश्च सुमन्त्रः सवसिष्ठकः॥४॥
पित्रादिवचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स राघवः। स्थितो देवार्चनं कृत्वा कौसल्यायै निवेद्य तत्॥५॥
राजोवाच वसिष्ठादीन् रामराज्याभिषेचने। सम्भारान् सम्भरन्तु स्म इत्युक्त्वा कैकेयीं गतः॥६॥
अयोध्यालङ्कृतिं दृष्ट्वा ज्ञात्वा रामाभिषेचनम्। भविष्यतीत्याचचक्षे कैकेयीं मन्थराऽसती॥७॥
पादौ गृहीत्वा रामेण कर्षिता सापराधतः। तेन वैरेण सा रामं वनवासं च काङ्क्षति॥८॥
कैकेयि त्वं समुत्तिष्ठ रामराज्याभिषेचनम्। मरणं तव पुत्रस्य मम ते नात्र संशयः॥९॥

अध्याय-६

अयोध्याकाण्ड की कथा

देवर्षि नारदजी ने कहा कि-भरत के ननिहाल चले जाने परडलक्ष्मण सहित. कौशल्यानन्दन दाशरथि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही पिता-माता आदि के सेवा-सत्कार में रहने लगे। एक दिन राजा दशरथ ने श्रीरामचन्द्रजी से कहा-हे 'रघुनन्दन! मेरी बात सुनो। तुम्हारे गुणों पर अनुरक्त हो प्रजाजनों ने मन-ही-मन आपको राज सिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया है-प्रजा की यह हार्दिक इच्छा है कि आप युवराज बनो; इसलिये कल प्रातः काल मैं आपको युवराज पद सम्प्रदान कर दूँगा। आज रात में आप सीता-सहित श्रेष्ठतम व्रत का पालन करते हुए संयमपूर्वक रहो।' राजा के आठ मन्त्रियों तथा ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने भी उनकी इस बात का अनुमोदन किया। उन आठ मन्त्रियों के नाम इस तरह हैं- दृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, राज्यवर्धन, अशोक, धर्मपाल तथा सुमन्त्र। इनके अतिरिक्त ब्रह्मर्षि वसिष्ठ भीडमन्त्रणा देते थे। पिता और मन्त्रियों की बातें सुनकर श्रीरघुनाथजी ने 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और माता कौसल्या को यह शुभ सामाचार बताकर देवताओं की पूजा करके वे संयम में स्थित हो गये। उधर महाराज दशरथ वसिष्ठ आदि मन्त्रियों को यह कहकर कि 'आप लोग श्रीरामचन्द्रजी के राज्यभिषेक की सामग्री जुटायें', कैकयी के भवन में चले गये। कैकयी के मन्थरा नामक एक दासी थी, जो बड़ी दुष्टा थी। उसने अयोध्या की सजावट होती देख, कौशल्यानन्दन दाशरथि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के राज्यभिषेक की बात जानकर रानी कैकयी से सारा हाल कह सुनाया। एक बार किसी अपराध के कारण श्रीरामचन्द्रजी ने मन्थरा को उसके पैर पकड़ कर घसीटा था। उसी वैर के कारण वह सदा यही चाहती थी कि राम का वनवास हो जाय॥१-८॥

मन्थरा ने कहा कि-हे कैकयी! आप उठो, राम का राज्याभिषेक होने जा रहा है। यह तुम्हारे पुत्र के लिये, मेरे लिये और तुम्हारे लिये भी मृत्यु के समान भयंकर वृत्तान्त है-इसमे कोई संदेह नहीं है॥९॥

कुब्जयोक्तं च तच्छ्रुत्वा एकमाभरणं ददौ। उवाच मे यथा रामस्तथा मे भरतः सुतः॥१०॥
उपायं तं न पश्यामि भरतो येन राज्यभाक्। कैकेयीमब्रवीत्क्रुद्धा हारं त्यक्त्वाथ मन्थरा॥११॥

मन्थरोवाच

वालिशे रक्ष भरतमात्मानं मां च राघवात्। भविता राघवो राजा राघवस्य ततः सुताः॥१२॥
राजवंशस्तु कैकेयि, भरतात्परिहास्यते। देवासुरे पुरा युद्धे शम्बरेण हताः सुराः॥१३॥
रात्रौ भर्ता गतस्तत्र रक्षितो विद्यया त्वया। वरद्वयं तदा प्रादाद्याचेदानीं नृपं च यत्॥१४॥
रामस्य च वने वासं नव वर्षाणि पञ्च च। यौवराज्यं च भरते तदिदानीं प्रदास्यति॥१५॥
प्रोत्साहिता कुब्जया सा अनर्थे चार्थदर्शिनी। उवाच सदुपायो मे कथितः स करिष्यति॥१६॥
क्रोधागारं प्रविश्याथ पतिता भुवि मूर्च्छिता। द्विजादीनर्चयित्वाथ राजा दशरथस्तदा॥१७॥
ददर्श कैकेयीं रुष्टामुवाच कथमीदृशी। रोगार्ता किं भयोद्विग्ना किमिच्छसि करोमि तत्॥१८॥
येन रामेण हि विना न जीवामि मुहूर्तकम्। शपामि तेन कुर्यां ते वाञ्छितं तव सुन्दरि॥१९॥
सत्यं ब्रूहीति सोवाच नृप मह्यं ददासि चेत्। वरद्वयं पूर्वदत्तं सत्यार्थं देहि मे नृप॥२०॥
चतुर्दश समा रामो वने वसतु संयतः। सम्भारैरेभिरद्यैव भरतोऽत्राभिषेच्यताम्॥२१॥

मन्थरा कुबड़ी थी। उसकी बात सुनकर रानी कैकयी को प्रसन्नता हुई। उन्होंने कुबड़ी को एक आभूषण उतारकर दिया और कहा-'मेरे लिये तो जिस प्रकार राम हैं, वैसे ही मेरे पुत्र भरत भी हैं। मुझको एसा कोई उपाय नहीं दिखायी देता, जिससे भरत को राज्य मिल सके।' मन्थरा ने उस हार को फेंक दिया और कुपित होकर कैकयी से कहा॥१०-११॥

मन्थरा ने कहा कि- ओ नादान! तू भरत को, अपने को और मुझको भी राम से बचा। कल राम राजा होंगे। तत्पश्चात् राम के पुत्रों को राज्य मिलेगा। हे कैकयी! अधुना राजवंश भरत से दूर हो जाएगा। मैं भरत को राज्य दिलाने का एक युक्ति बतलाती हूँ। पहले की बात है। देवासुर-संग्राम में शम्बरासुर ने देवताओं को मार भगाया था। तेरे स्वामी भी उस युद्ध में गये थे। उस समय तुने अपनी विद्या से रात में स्वामी की रक्षा की थी। इसके लिये महाराजा ने तुझे दो वर देने की प्रतिज्ञा की थी। इस समय उन्हीं दोनों वरों को उनसे माँग। एक वर के द्वारा राम का चौदह वर्षों के लिये वनवास और दूसरे के द्वारा भरत का युवराज-पद पर अभिषेक माँग ले। राजा इस समय वे दोनों वर दे देंगे॥१२-१५॥

इस तरह मन्थरा के प्रोत्साहन देने पर कैकयी अनर्थ में ही अर्थ की सिद्धि देखने लगी और बोली-'हे कुब्जे! तूने बड़ा अच्छा उपाय बतलाया है। राजा मेरा मनेप्सित अवश्य पूर्ण करेंगे।' एसा कहकर वह कोपभवन में चली गयी और पृथ्वी पर अचेत-सी होकर पड़ रही। उधर महाराज दशरथ ब्राह्मण आदि का पूजन करके जिस समय कैकयी के भवन में आये तो उसको रोष में भरी हुई देखा। तत्पश्चात् राजा ने पूछा-'हे सुन्दरी! आपकी ऐसी दशा क्यों हो रही है? आपको कोई रोग तो नहीं सता रहा है? अथवा किसी भय से व्याकुल तो नहीं हो? बताओ, क्या चाहती हो? मैं अभी आपकी इच्छा पूर्ण करने जा रहा हूँ। जिन श्रीरामचन्द्रजी के बिना मैं क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकता, उन्हीं की शपथ खाकर कह रहा हूँ, आपका मनेप्सित अवश्य पूर्ण करने जा रहा हूँ। सच-सच बताओ, क्या चाहती हो?' कैकयी बोली-'हे राजन! यदि आप मुझको कुछ देना चाहते हों, तो अपने सत्य की रक्षा के लिये पहले के दिये

विषं पीत्वा मरिष्यामि दास्यसि त्वं न चेन्नृप। तच्छुत्वा मूर्च्छितो भूमौ व्रजाहत इवापतत्
मुहूर्ताच्चेतनां प्राप्य कैकेयीमिदमब्रवीत्।।२२।।

दशरथ उवाच

किं कृतं तव रामेण मया वा पापनिश्चये। यन्मामेवं ब्रवीषि त्वं सर्वलोकाप्रियङ्करि।।२३।।
केवलं त्वत्प्रियं कृत्वा भविष्यामि सुनिन्दितः। न त्वं भार्या कालरात्रिर्भरतो नेदृशः सुतः।।२४।।
प्रशाधि विधवा राज्यं मृते मयि गते सुते। सत्यपाशनिबद्धस्तु राममाहूय चाब्रवीत्।।२५।।
कैकेय्या वञ्चितो राम राज्यं कुरु निगृह्य माम्। त्वया वने तु वस्तव्यं कैकेयी भरतो नृपः।।२६।।
पितरं चैव कैकेयीं नमस्कृत्य प्रदक्षिणम्। कृत्वा नत्वा च कौसल्यां समाश्वास्य सलक्ष्मणः।।२७।।
सीतया भार्यया सार्धं सरथः ससुमन्त्रकः। दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यो दीनानाथेभ्य एव सः।।२८।।
मातृभिश्चैव पित्राद्यैः शोकार्तैर्निर्गतः पुरात्। उषित्वा तमसातीरे रात्रौ पौरान् विहाय च।।२९।।
प्रभाते तमपश्यन्तोऽयोध्यां ते पुनरागतः। रुदन् राजापि कौसल्यागृहमागात्सुदुःखितः।।३०।।
पौरा जनाः स्त्रियः सर्वा रुरुदू राजयोषितः। रामो रथस्थश्चीराढ्यः शृङ्गवेरपुरं ययौ।।३१।।
गुहेन पूजितस्तत्र इङ्गुदीमूलमाश्रितः। लक्ष्मणः सगुहो रात्रौ चक्रतुर्जागरं हि तौ।।३२।।

हुए दो वरदान देने की कृपा करें। मैं चाहती हूँ, राम चौदह वर्षों तक संयमपूर्वक वन में निवास करें और इन सामग्रियों के द्वारा आज ही भरत का युवराज पद पर अभिषेक हो जाय। हे महाराज! यदि ये दोनों वरदान आप मुझको नहीं देंगे तो मैं विष पीकर मर जाऊँगी।' यह सुनकर राजा दशरथ वज्र से आहत हुए की भाँति मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। तत्पश्चात् थोड़ी देर में चेत होने पर उन्होंने कैकयी से कहा।।१६-२३।।

दशरथजी ने कहा कि-पापपूर्ण विचार रखने वाली हे कैकयी! तू अखिल संसार का अप्रिय करने वाली है। मैंने या राम ने तेरा क्या बिगाड़ा है, जो तू मुझसे ऐसी बात कहती है? केवल तुझे प्रिय लगने वाल यह कार्य करके मैं संसार में भलीभाँति निन्दित हो जाऊँगा। तू मेरी स्त्री नहीं, कालरात्रि है। मेरा पुत्र भरत ऐसा नहीं है। हे पापिनी! मेरे पुत्र के चले जाने पर जिस समय मैं मर जाऊँगा तो तू विधवा होकर राज्य करना।।२४-२५।। राजा दशरथ सत्य के बन्धन में बँधे थे। उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी को बुलाकर कहा-'हे बेटा! कैकयी ने मुझको ठग लिया। आप मुझको कैद करके राज्य को अपने अधिकार में कर लो। अन्यथा आपको वन में निवास करना होगा और कैकयी का पुत्र भरत राजा बनेगा।' श्रीरामचन्द्रजी ने पिता और कैकयी को नमस्कार करके उनकी प्रदक्षिणा की और कौसल्या के चरणों में मस्तक झुकाकर उनको सान्त्वना दी। तत्पश्चात् लक्ष्मण और पत्नी सीता को साथ ले, ब्राह्मणों, दीनों और अनाथों को दान देकर, सुमन्त्र सहित रथ पर बैठकर वे नगर से बाहर निकले। उस समय माता-पिता आदि शोक से आतुर हो रहे थे। उस रात श्रीरामचन्द्रजी ने तमसा नदी के तट पर निवास किया। उनके साथ बहुत -से पुरवासी भी गये थे। उन सभी को सोते छोड़कर वे आगे बढ़ गये। प्रातः काल होने पर जिस समय श्रीरामचन्द्रजी नहीं दिखायी दिये तो नगरनिवासी निराश होकर पुनः अयोध्या लौट आये। श्रीरामचन्द्रजी के चले जाने से राजा दशरथ बहुत दुःखी हुए। वे रोते-रोते कैकयी का महल छोड़कर कौसल्या के भवन में चले आये। उस समय नगर के समस्त स्त्री-पुरूष और निवास की स्त्रियाँ फूट-फूटकर रो रही थीं। श्रीरामचन्द्रजी ने चीरवस्त्र धारण कर रखा था। वे रथ पर बैठे-बैठे शृङ्गवेरपुर जा पहुँचे। वहाँ निषादराज गुह ने उनका पूजन, स्वागत-सतकार किया। श्रीरघुनाथजी ने इङ्गुदी-वृक्ष की जड़

सुमन्त्रं सरथं त्यक्त्वा प्रातर्नावाऽथ जाह्नवीम्। रामलक्ष्मणसीताश्च तीर्त्वा तेऽगुः प्रयागकम्।।३३।।
भरद्वाजं नमस्कृत्य चित्रकूटगिरिं ययुः। वास्तुपूजां तत्र कृत्वा स्थिता मन्दाकिनीतटे।।३४।।
सीतायै दर्शयामास चित्रकूटं च राघवः। नखैर्विदारयन्तं तं काकं तच्चक्षुराक्षिपत्।।३५।।
ऐषिकास्त्रेण ( ) शरणं प्राप्तो देवान् विहाय सः। रामे वनं गते राजा षष्ठेऽह्निनिशि चाब्रवीत्।।३६।।
कौशल्यायै कथां पूर्वां यदज्ञानाद्धतः पुरा। कौमारे सरयूतीरे यज्ञदत्तकुमारकः।।३७।।
शब्दभेदाच्च कुम्भेन शब्दं कुर्वंश्च तत्पिता। शशाप विलपन्मात्रा शोकं कृत्वा रुदन्मुहुः।।३८।।
पुत्रं विना मरिष्यावस्त्वं च शोकान्मरिष्यसि। पुत्रं विना स्मरञ्शोकात्कौशल्ये मरणं मम।।३९।।
कथामुक्त्वाथ हा राममुक्त्वा राजा दिवं गतः। सुप्तं मत्वाऽथ कौशल्या सुप्ता शोकार्तमेव सा।।४०।।
सुप्रभाते शयानं तं सूतमागधबन्दिनः। प्रबोधका बोधयन्ति न च बुध्यत्सयौ नृपः।।४१।।
कौशल्या तं मृतं ज्ञात्वा हा हतास्मीति चापतत्। नरा नार्योऽथ रुरूदुस्तैलद्रोण्यां निधाय तम्।।४२।।
वसिष्ठेन च तत्कालमानीतो भरतः किल। सुमन्त्राद्यैः सशत्रुघ्नः शीघ्रं राजगृहात्पुरीम्।।४३।।

के सन्निकट विश्राम किया। लक्ष्मण और गुह दोनों ने रातभर जागकर पहरा देते रहना उचित समझा।।२६-३२।। प्रातः काल श्रीरामचन्द्रजी ने रथ सहित सुमन्त्र को विदा कर दिया तथा स्वयं लक्ष्मण और सीता के साथ नाव से गङ्गा-पार हो वे प्रयाग को गये।।३३।। वहाँ उन्होंने महर्षि भरद्वाज को नमस्कार किया और उनकी आज्ञा ले वहाँ से चित्रकूट पर्वत को प्रस्थान किया। चित्रकूट पहुँचकर उन्होंने वास्तुपूजा करने के अनन्तर (पर्णकुटी बनाकर) मन्दाकिनी के तट पर निवास किया। रघुनाथजी ने सीता को चित्रकूट पर्वत का रमणीय दृश्य दिखलाया। इसी समय एक कौए ने सीताजी के कोमल श्रीअङ्ग में नखों से प्रहार किया। यह देख श्रीरामचन्द्रजी ने उसके उपर सींक के अस्त्र का प्रयोग किया। जिस समय वह कौआ शरण में आया, तत्पश्चात् उन्होने उसकी केवल एक आँख नष्ट करके उसको जीवित छोड़ दिया। श्रीरामचन्द्रजी के वनगमन के पश्चात् छठे दिन की रात में राजा दशरथ ने कौसल्या से पहले की एक घटना सुनायी, जिसमें उनके द्वारा कुमारावस्था में सरयु के तट पर अनजान में यज्ञदत्त-पुत्र श्रवणकुमार के मारे जाने का वृत्तान्त था। "श्रवणकुमार पानी लेने के लिये आया था। उस समय उसके घड़े के भरने से जो शब्द हो रहा था, उसकी आहट पाकर मैंने उसको कोई जंगली जन्तु समझा और शब्दवेधी बाण से उसका वध कर डाला। यह समाचार पाकर उसके पिता और माता को बड़ा शोक हुआ। वे बारंबार विलाप करने लगे। उस समय श्रवणकुमार के पिता ने मुझको श्राप देते हुए कहा 'हे राजन! हम दोनों पति-पत्नी पुत्र के बिना शोकातुर होकर प्राणत्याग रहे हैं; आप भी हमारी ही तरह पुत्र वियोग के शोक से मरोगे; तुम्हारे पुत्र मरेंगे तो नहीं, परन्तु उस समय तुम्हारे पास कोई पुत्र मौजूद न होगा।' हे कौसल्ये! आज उस श्राप का मुझको स्मरण हो रहा है। जान पड़ता है, अधुना इसी शोक से मेरी मृत्यु होगी।" इतनी कथा कहने के पश्चात् राजा ने 'हे राम!' कहकर स्वर्गलोक को प्रयाण किया। कौसल्या ने समझा, महाराज शोक से आतुर हैं; इस समय नींद आ गयी होगी। ऐसा विचार करके वे सो गयीं। प्रातः काल जगाने वाले सूत, मागध और बन्दीजन सोते हुए महाराजा को जगाने लगे; किंतु वे न जगे।।३४-४१।। तत्पश्चात् उनको मरा हुआ जान रानी कौसल्या 'हाय! मैं मारी गयी' कहकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसके बाद तो समस्त नर-नारी फूट-फूटकर रोने लगे। तत्पश्चात् महर्षि वसिष्ठ ने राजा के शव को तैलभरी नौका में रखवाकर भरत को उनके ननिहाल से तत्काल बुलवाया। भरत और शत्रुघ्न अपने मामा के राजमहल से निकलकर सुमन्त्र आदि के साथ शीघ्र ही अयोध्यापुरी में आये।।४२-४३।।

दृष्ट्वा सशोकां कैकेयीं निन्दयामास दुःखितः। अकीर्तिः पातिता मूर्ध्नि कौशल्यां स प्रशस्य च॥४४॥
पितरं तैलद्रोणीस्थं संस्कृत्य सरयूतटे। वसिष्ठाद्यैर्जनैरुक्तो राज्यं कुर्विति सोऽब्रवीत्॥४५॥
व्रजामि राममानेतुं रामो राजा मतो बली। शृङ्गवेरं प्रयागं च भरद्वाजेन भोजितः॥४६॥
नमस्कृत्य भरद्वाजं रामं लक्ष्मणमागतः। पिता स्वर्गं गतो राम अयोध्यायां नृपो भव॥४७॥
अहं वनं प्रयास्यामि त्वदादेशप्रतीक्षकः। रामः श्रुत्वा जलं दत्त्वा गृहीत्वा पादुके व्रज॥४८॥
राज्यायाहं न यास्यामि सत्याच्चीरजटाधरः। रामोक्तो भरतश्चागान्नन्दिग्रामे स्थितो बली॥४९॥
त्यक्त्वाऽयोध्यां पादुके ते पूज्य राज्यं प्रपालयत्॥५०॥

॥इत्यादिमहापुराणे भगवान् वेदव्यासकृत श्रीविष्णुवामपादस्वरूपे श्रीअग्निमहापुराणान्तर्गते रामाख्यानेऽयोध्याकाण्डे षष्ठोऽध्यायः॥६॥



यहाँ का समाचार जानकर भरत को बड़ा दुःख हुआ। कैकयी को शोक करती देख उसकी कठोर शब्दों में निन्दा करते हुए बोले–'अरी! तूने मेरे माथे कलङ्कका टीका लगा दिया–मेरे सिर पर अपयश का भारी बोझ लाद दिया।' तत्पश्चात् उन्होंने कौसल्या की प्रशंसा करके तैलपूर्ण नौका में रखे हुए पिता के शव का सरयू तट पर अन्त्येष्टि-संस्कार किया। उसके बाद वसिष्ठ आदि गुरूजनों ने कहा–'हे भरत! अधुना राज्य ग्रहण करो।' भरत बोले–'मैं तो श्रीरामचन्द्रजी को ही राजा मानता हूँ। अधुना उनको यहाँ लाने के लिये वन में जाता हूँ।' ऐसा कहकर वे वहाँ से दल-बल सहित चल दिये और शृङ्गवेरपुर होते हुए प्रयाग पहुँचे। वहाँ महर्षि भरद्वाज ने उन सभी को भोजन कराया। तत्पश्चात् भरद्वाज को नमस्कार करके वे प्रयाग से चले और चित्रकूट में श्रीरामचन्द्रजी एवं लक्ष्मण के सन्निकट आ पहुँचे। वहाँ भरत ने श्रीरामचन्द्रजी से कहा–'हे रघुनाथजी! हमारे पिता महाराज दशरथ सर्वगवासी हो गये। अधुना आप अयोध्या में चलकर राज्य ग्रहण करें। मैं आपकी आज्ञा का पालन करते हुए वन में जाऊँगा।' यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने पिता का तर्पण किया और भरत से कहा–'आप मेरी चरण पादुका लेकर अयोध्या लौट जाओ। मैं राज्य करने के लिये नहीं चलूँगा। पिता के सत्य की रक्षा के लिये चीर एवं जटा धारण करके वन में ही रहूँगा।' श्रीरामचन्द्रजी के ऐसा कहने पर सदल-बल भरत लौट गये और अयोध्या छोड़कर नन्दिग्राम में रहने लगे। वहाँ भगवान् की चरण पादुकाओं की पूजा करते हुए वे राज्य का भली-भाँति पालन करने लगे॥४४-५१॥

॥इस प्रकार महापुराणों में श्रेष्ठ श्रीविष्णुवामपादस्वरूप कृष्णद्वैपायन भगवान् व्यासकृत अग्निमहापुराणान्तर्गत आगत विषयों का विवेचन सम्बन्धी छठवाँ अध्याय डॉ. सुरकान्त झा द्वारा सुसम्पन्न हुआ॥६॥



अथ सप्तमोऽध्यायः

रामायणेऽरण्यकाण्डवर्णनम्

नारद उवाच

रामो वसिष्ठं मातृश्च नत्वात्रिं च प्रणम्य सः। अनसूयां च तत्पत्नीं शरभङ्गं सुतीक्ष्णकम्।।१।।
अगस्त्यभ्रातरं नत्वा अगस्त्यं तत्प्रसादतः। धनुः खड्गं च सम्प्राप्य दण्डकारण्यमागतः।।२।।
जनस्थाने पञ्चवट्यां स्थितो गोदावरीतटे। तत्र शूर्पणखाऽऽयाता भक्षितुं तान्भयङ्करी।।३।।
रामं सुरूपं दृष्ट्वा सा कामिनी वाक्यमब्रवीत्।।४।।

शूर्पणखा उवाच

कस्त्वं कस्मात्समायातो भर्ता मे भव चार्थितः। एतौ च भक्षयिष्यामि इत्युक्त्वात्तं समुद्यता।।५।।
तस्य नासां च कर्णौ च रामोक्तो लक्ष्मणोऽच्छिनत्। रक्तं क्षरन्ती प्रययौ खरं भ्रातरमब्रवीत्।।६।।
मरिष्यामि विनासाऽहं खर जीवामि वै तदा। रामस्य जाया सीताऽस्ति तस्यासील्लक्ष्मणोऽनुजः।।७।।
तेषां यद्रुधिरं कोष्णं पाययिष्यसि मां यदि। खरस्तथेति तामुक्त्वा चतुर्दशसहस्रकैः।।८।।
रक्षसां दूषणेनागादथ त्रिशिरसा सह। रामं, रामोऽपि युयुधे शरैर्विव्याध राक्षसान्।।९।।

अध्याय–७

अरण्यकाण्ड की कथा

देवर्षि नारदजी ने कहा कि–हे मुने! श्रीरामचन्द्रजी ने महर्षि वसिष्ठ तथा माताओं को नमस्कार करके उन सभी को भरत के साथ विदा कर दिया। तत्पश्चात् महर्षि अत्रि तथा उनकी पत्नी अनसूया को, शरभङ्गमुनि को, सुतीक्ष्ण को तथा अगस्त्जी के भ्राता अग्निजिह्व मुनि को नमस्कार करते हुए श्रीरामचन्द्रजी ने अगस्त्यमुनि के आश्रम पर जा उनके चरणों में मस्तक झुकाया और मुनि की कृपा से दिव्य धनुष एवं दिव्य खड्ग प्राप्त करके वे दण्डकारण्य में आये। वहाँ जनस्थान के अन्दर पञ्चवटी नामक स्थान में गोदावरी के तट पर रहने लगे। एक दिन शूर्पणखा नाम वाली भयंकर राक्षसी राम, लक्ष्मण और सीता को खा जाने के लिये पञ्चवटी में आयी; परन्तु श्रीरामचन्द्रजी का अत्यन्त मनोहर रूप देखकर वह काम के अधीन हो गयी और बोली।।१–४।।

शूर्पणखा ने कहा कि–तुम कौन हो? कहाँ से आये हो? मेरी याचना से अधुना आप मेरे पति हो जाओ। यदि मेरे साथ आपका सम्बन्ध होने में ये दोनों सीता और लक्ष्मण बाधक हैं तो.मैं इन दोनों को अभी खाये लेती हूँ।।५।।

ऐसा कहकर वह उनको खा जाने को तैयार हो गयी। तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी के कहने से लक्ष्मण ने शूर्पणखा की नाक और दोनों कान भी काट लिये। कटे हुए अङ्गो से रक्त की धारा बहाती हुई शूर्पणखा अपने भाई खर के पास गयी और इस तरह बोली–'हे खर! मेरी नाक कट गयी। इस अपमान के बाद मैं जीवित नहीं रह सकती। अधुना तो मेरा जीवन तभी रह सकता है, जिस समय कि आप मुझको राम का, उनकी पत्नी सीता का तथा उनक छोटे भाई लक्ष्मण का गरम–गरम रक्त पिलाओ।।६–७$\frac{1}{2}$।।' खर ने उसको 'बहुत अच्छा' कहकर शान्त किया और दूषण तथा त्रिशिरा के साथ चौदह हजार राक्षसों की सेना ले श्रीरामचन्द्रजी पर चढ़ाई की। श्रीरामचन्द्रजी ने भी उन सभी का सामना

हस्त्यश्वरथपादातं बलं निन्ये यमक्षयम्। त्रिशीर्षाणं खरं रौद्रं युध्यन्तं चैव दूषणम्।।१०।।
ययौ शूर्पणखा लङ्कां रावणाग्रेऽपतद्भुवि। अब्रवीद् रावणं क्रुद्धा न त्वं राजा च रक्षकः।।११।।
खरादिहन्तू रामस्य सीतां भार्यां हरस्व च। रामलक्ष्मणरक्तस्य पानाज्जीवामि नान्यथा।।१२।।
तथेत्याह च तच्छ्रुत्वा मारीचं प्राह वै व्रज। स्वर्णचित्रमृगो भूत्वा रामलक्ष्मणकर्षकः।।१३।।
सीताग्रे, तां हरिष्यामि अन्यथा मरणं तव। मारीचो रावणं प्राह रामो मृत्युर्धनुर्धरः।।१४।।
रावणादपि मर्तव्यं मर्तव्यं राघवादपि। अवश्यं यदि मर्तव्यं वरं रामो न रावणः।।१५।।
इति मत्वा मृगो भूत्वा सीताग्रे व्यचरन्मुहुः। सीतया प्रेरितो रामः शरेणाथावधीच्च तम्।।१६।।
म्रियमाणो मृगः प्राह हा सीते! लक्ष्मणेति च। सौमित्रिः सीतयोक्तोऽथ विरुद्धं राममागतः।।१७।।
रावणोऽप्यहरत्सीतां हत्वा गृध्रं जटायुषम्। जटायुषा स विरथो अंसमादाय जानकीम्।।१८।।
गतो लङ्कामशोकाख्ये धारयामास चाब्रवीत्।।१९।।

रावण उवाच

'भव भार्या ममाग्रया त्वं', 'राक्षस्यो! रक्ष्यतामियम्। रामो हत्वाथ मारीचं दृष्ट्वा लक्ष्मणमब्रवीत्।।२०।।

किया और अपने बाणों से राक्षसों को बींधना प्रारम्भ किया। शत्रुओं के हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सहित समस्त चतुरङ्गिणी सेना को उन्होनें यमलोक पहुँचा दिया तथा अपने साथ युद्ध करने वाले भयंकर राक्षस खर, दूषण एवं त्रिशिरा को भी मौत के घाट उतार दिया। अधुना शूर्पणखा लंङ्का में गयी और दशानन रावण के सामने जा पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसने क्रोध में भरकर दशानन रावण से कहा-'अरे! तू राजा और रक्षक कहलाने योग्य नहीं है। खर आदि समस्त राक्षसों का विनाश करने वाले राम की पत्नी सीता को हर ले। मैं राम और लक्ष्मण का रक्त जीवित रहूँगी; अन्यथा नहीं'।।८-१२।।

शूर्पणखा की बात सुनकर दशानन रावण ने कहा-'अच्छा, ऐसा ही होगा।' तत्पश्चात् उसने मारीच से कहा-'तुम स्वर्णमय विचित्र मृग का रूप धारण करके सीता के सामने जाओ और राम तथा लक्ष्मण को अपने पीछे आश्रम से दूर हटा ले जाओ।।१३।। मैं सीता का हरण करने जा रहा हूँ। यदि मेरी बात न मानोगे, तो आपकी मृत्यु निश्चित है।' मारीच ने दशानन रावण से कहा-'हे दशानन रावण! धनुर्धर राम साक्षात् मृत्यु हैं।।१४।।'

तत्पश्चात् उसने मन-ही-मन सोचा-'यदि नहीं जाऊँगा, तो दशानन रावण के हाथ से मरना होगा और जाऊँगा तो श्रीरामचन्द्रजी के हाथ से। इस तरह यदि मरना अनिवार्य है तो इसके लिये श्रीरामचन्द्रजी ही श्रेष्ठ हैं, दशानन रावण नहीं; क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी के हाथ से मृत्यु होने पर मेरी मुक्ति हो जायगी। ऐसा विचार कर वह मृगरूप धारण करके सीता के सामने बारंबार आने-जाने लगा। तत्पश्चात् सीताजी की प्रेणा से श्रीरामचन्द्रजी ने दूर तक उसका पीछा करके उसको अपने बाण से मार डाला। मरते समय उस मृग ने 'हे सीते! हे लक्ष्मण!' कहकर पुकार लगायी। उस समय सीता के कहने से लक्ष्मण अपनी इच्छा के विरूद्ध श्रीरामचन्द्रजी के पास गये। इसी बीच में दशानन रावण ने भी मौका पाकर सीता को हर लिया। मार्ग में जाते समय उसने गृध्रराज जटायु का वध किया। जटायु ने भी उसके रथ को नष्ट कर डाला था। रथ न रहने पर दशानन रावण ने सीता को कंधे पर बिठा लिया और उनको लंङ्का में ले जाकर अशोक वाटिका में रखा और वहाँ सीता से बोला-'तुम मेरी पटरानी बन जाओ।' तत्पश्चात् राक्षसियों की तरफ देखकर कहा-'हे निशाचरियो! इसकी रख वाली करो'।।१५-१९$\frac{१}{२}$।। उधर श्रीरामचन्द्रजी जिस समय मारीच को मारकर लौटे,

श्रीराम उवाच

मायामृगोऽसौ सौमित्रे! यथा त्वमिह चागतः। तथा सीता हृता नूनं नापश्यत्स गतोऽथ ताम्।।२१।।
शुशोच विललापार्तो मां त्यक्त्वा क्व गतासि वै। लक्ष्मणाश्वासितो रामो मार्गयामास जानकीम्।।२२।।
दृष्ट्वा जटायुस्तं प्राह रावणो हृतवांश्च ताम्। मृतोऽथ संस्कृतस्तेन कबन्धं चावधीत्ततः।।२३।।
शापमुक्तोऽब्रवीद्रामं स त्वं सुग्रीवमाव्रज।।२४।।

।।इत्यादिमहापुराणे भगवान् वेदव्यासकृत श्रीविष्णुवामपादस्वरूपे श्रीअग्निमहापुराणान्तर्गते रामायणेऽरण्यकाण्डे सप्तमोऽध्यायः।।७।।



तो लक्ष्मण को आते देखकर बोले–'हे सुमित्रानन्दन! वह मृग तो मायामय था–वास्तव में वह एक राक्षस था; किंतु आप जो इस समय यहाँ आ गये, इससे जान पड़ता है, निश्चय ही कोई सीता को हर ले गया।' श्रीरामचन्द्रजी आश्रम पर गये; किंतु वहाँ सीता नहीं दिखायी दीं। उस समय वे आर्त होकर शोक और विलाप करने लगे–'हे प्रिये जानकी! तू मुझको छोड़कर कहाँ चली गयी?' लक्ष्मण ने श्रीरामचन्द्रजी को सान्त्वना दी। तत्पश्चात् वे वन में घूम-घूम सीता की खोज करने लगे। इसी समय इनकी जटायु से भेंट हुई। जटायु ने यह कहकर कि 'सीता को दशानन रावण हर ले गया है' प्राण त्याग दिया। तत्पश्चात् श्रीरघुनाथजी ने अपने हाथ से जटायु का दाह-संस्कार किया। इसके बाद इन्होंने कबन्ध का वध किया। कबन्ध ने श्राप मुक्त होने पर श्रीरामचन्द्रजी से कहा–'आप सुग्रीव से मिलिये'।।२०-२४।।

।।इस प्रकार महापुराणों में श्रेष्ठ श्रीविष्णुवामपादस्वरूप कृष्णाद्वैपायन भगवान् व्यासकृत अग्निमहापुराणान्तर्गत आगत विषयों का विवेचन सम्बन्धी सातवाँ अध्याय डॉ. सुरकान्त झा द्वारा सुसम्पन्न हुआ।।७।।



अथाष्टमोऽध्यायः

रामायणे किष्किन्धाकाण्डवर्णनम्

नारद उवाच

रामः पम्पासरो गत्वाऽशोचत्स शबरीं गतः। हनूमताऽथ सुग्रीवं नीतो मित्रं चकार ह॥१॥
सप्ततालान्विनिर्भिद्य शरेणैकेन पश्यतः। पादेन दुन्दुभेः कायं चिक्षेप दशयोजनम्॥२॥
तद्रिपुं वालिनं हत्वा भ्रातरं वैरकारिणम्। किष्किन्धां कपिराज्यं च रुमां तारां समर्पयत्॥३॥
ऋष्यमूके हरीशाय, किष्किन्धेशोऽब्रवीदथ। सीतां त्वं प्राप्स्यसे तद्वत्तथा राम! करोमि ते॥४॥
तच्छ्रुत्वा माल्यवत्पृष्ठे चातुर्मास्यं चकार सः। किष्किन्धायां च सुग्रीवो यदा नायाति दर्शनम्॥५॥
तदाब्रवीत्तं रामोक्तो लक्ष्मणो व्रज राघवम्। न च सङ्कुचितः पन्था येन वाली हतो गतः॥६॥
समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः। सुग्रीव आह संसक्तो गतं कालं न बुद्धवान्॥७॥
इत्युक्त्वा स गतो रामं नत्वोवाच हरीश्वरः॥८॥

सुग्रीव उवाच

आनीता वानराः सर्वे सीतायाश्च गवेषणे। त्वन्मताः प्रेषयिष्यामि विचिन्वन्तु च जानकीम्॥९॥

अध्याय–८

किष्किन्धाकाण्ड की कथा

देवर्षि नारदजी ने कहा कि–श्रीरामजी पम्पा सरोवर पर जाकर सीताजी के लिये शोक से व्याकुल हो गये। वहाँ वे शबरी से मिले। तत्पश्चात् हनुमान्‌जी से उनकी भेंट हुई। हनुमान्‌जी उनको सुग्रीव के पास ले गये और सुग्रीव के साथ उनकी मित्रता करायी। श्रीरामचन्द्रजी ने सभी के देखते–देखते ताड़ के सात वृक्षों को एक ही बाण से बींध डाला और दुन्दुभि नामक दानव के विशाल शरीर को पैर की ठोकर से दस योजन दूर फेंक दिया। इसके बाद सुग्रीव के शत्रु वाली को, जो भाई होते हुए भी उनके साथ वैर रखता था, मार डाला और किष्किन्धापुरी, वानरों का साम्राज्य, रूमा एवं तारा–इन सभी को ऋष्यमूक पर्वत पर वानरराज सुग्रीव के अधीन कर दिया। उसके बाद किष्किन्धापुरी के स्वामी सुग्रीव ने कहा–'हे श्रीराम! आपको सीताजी की प्राप्ति जिस तरह भी हो सके, ऐसा उपाय मैं कर रहा हूँ।' यह सुनने के बाद श्रीरामचन्द्रजी ने माल्यवान् पर्वत के शिखर पर वर्षा के चार महीने व्यतीत किये और सुग्रीव किष्किन्धा में रहने लगे। चौमासे के बाद भी जिस समय सुग्रीव नहीं दिखायी दिये, तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से लक्ष्मण ने किष्किन्धा में जाकर कहा–'हे सुग्रीव! आप श्रीरामचन्द्रजी के पास चलो। अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहो, नहीं तो वाली मरकर जिस मार्ग से गया है, वह मार्ग अभी बन्द नहीं हुआ है। अतएव वाली के पथ का अनुसरण न करो।' सुग्रीव ने कहा–'हे सुमित्रानन्दन! विषयभोग में आसक्त हो जाने के कारण मुझको बीते हुए समय का भान न रहा। इसलिये मेरे अपराध को क्षमा कीजिये'॥१–७॥

ऐसा कहकर वानरराज सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजी के पास गये और उनको नमस्कार करके बोले 'हे भगवन्! मैंने सभी वानरों को बुला लिया है। अधुना आपकी इच्छा के अनुसार सीताजी की खोज करने के लिये उनको भेजूँगा।

पूर्वादौ मासपर्यन्तं मासादूर्ध्वं निहन्मि तान्। इत्युक्ता वानराःपूर्वपश्चिमोत्तरमार्गगाः।।१०।।
जग्मू रामं ससुग्रीवमपश्यन्तस्तु जानकीम् (?)। रामाङ्गुलीयं सङ्गृह्य हनूमान् वानरैः सह।।११।।
दक्षिणे मार्गयामास सुप्रभाया गुहान्तिके। मासादूर्ध्वं च विन्ध्यस्था अपश्यन्तस्तु जानकीम्।।१२।।
ऊचुर्वृथा मरिष्यामो जटायुर्धन्य एव सः। सीतार्थे योऽत्यजत्प्राणान् रावणेन हतो रणे।।१३।।
तच्छ्रुत्वा प्राह सम्पातिर्विहाय कपिभक्षणम्। भ्रातासौ मे जटायुर्वै मयोड्डीनोऽर्कमण्डलम्।।१४।।
अर्कतापाद्रक्षितोऽगाद्दग्धपक्षो ऽहमत्रगः। रामवार्ताश्रवात्पक्षौ जातौ भूयोऽथ जानकीम्।।१५।।
पश्याम्यशोकवनिकागतां लङ्कागतां किल। शतयोजनविस्तीर्णे लवणाब्धौ त्रिकूटके।।१६।।
ज्ञात्वा, रामं ससुग्रीवं वानराः कथयन्तु वै।।१७।।

।।इत्यादिमहापुराणे भगवान् वेदव्यासकृत श्रीविष्णुवामपादस्वरूपे
श्रीअग्निमहापुराणान्तर्गते रामायणे किष्किन्धाकाण्डेऽष्टमोऽध्यायः।।८।।



वे पूर्वादि दिशाओं में जाकर एक महीने तक सीताजी की खोज करें। जो एक महीने के बाद लौटेगा, उसको मैं मार डालूँगा।' यह सुनकर बहुत-से वानर पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशाओं के मार्ग पर चल पड़े तथा वहाँ जनक कुमारी सीता को न पाकर नियत समय के अन्दर श्रीरामचन्द्रजी और सुग्रीव के पास लौट आये। हनुमान्जी श्रीरामचन्द्रजी की दी हुई अगूँठी लेकर अन्य वानरों के साथ दक्षिण दिशा में जानकीजी की खोज कर रहे थे। वे लोग सुप्रभा की गुफा के सन्निकट विन्ध्यपर्वत पर ही एक मास से अधिक काल तक ढूँढ़ते रहे; किंतु उनको सीताजी का दर्शन नहीं हुआ। अन्त में निराश होकर आपस में कहने लगे 'हम लोगों को व्यर्थ ही प्राण देने पड़ेगे। धन्य है वह जटायु, जिसने सीता के लिये दशानन रावण के द्वारा मारा जाकर युद्ध में प्राण त्याग दिया था'।।८-१३।। उनकी ये बातें सम्पाति नामक गृध्र के कानों में पड़ी। वह वानरों के (प्राण त्याग की चर्चा से उनके) खाने की ताक में लगा था। किंतु जटायु की चर्चा सुनकर रुक गया और बोला-'हे वानरों! जटायु मेरा भाई था। वह मेरे ही साथ सूर्य मण्डल की तरफ उड़ा चला जा रहा था। मैंने अपनी पंखो की ओट में रखकर सूर्य की प्रखर किरणों के ताप से उसको बचाया। इसलिये वह तो सकुशल बच गया; किंतु मेरी पंखे जल गयीं, इसलिये मैं यहीं गिर पड़ा। आज श्रीरामचन्द्रजी की वार्ता सुनने के पश्चात् मेरे पंख निकल आये। अधुना मैं जानकी को देखता हूँ; वे लङ्का में अशोक-वाटिका के अन्दर हैं। लवण समुद्र के द्वीप में त्रिकूट पर्वत पर लङ्का बसी हुई है। यहाँ से वहाँ तक का समुद्र सौ योजन विस्तृत है। यह जानकर सभी वानर श्रीरामचन्द्रजी और सुग्रीव के पास जायँ और उनको सभी समाचार बता दें'।।१४-१७।।

।।इस प्रकार महापुराणों में श्रेष्ठ श्रीविष्णुवामपादस्वरूप कृष्णद्वैपायन भगवान् व्यासकृत अग्निमहापुराणान्तर्गत आगत विषयों का विवेचन सम्बन्धी आठवाँ अध्याय डॉ. सुरकान्त झा द्वारा सुसम्पन्न हुआ।।८।।



अथ नवमोऽध्यायः

रामायणे सुन्दरकाण्डम्

नारद उवाच

सम्पातिवचनं श्रुत्वा हनूमानङ्गदादयः। अब्धिं दृष्ट्वाऽब्रुवंस्तेऽब्धिं लङ्घयेत्को नु जीवयेत्।।१।।
कपीनां जीवनार्थाय रामकार्यप्रसिद्धये। शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवेऽब्धिं स मारुतिः।।२।।
दृष्ट्योत्थितं च मैनाकं सिंहिकां विनिपात्य च। लङ्कां दृष्ट्वा राक्षसानां गृहाणि, वनितागृहे।।३।।
दशग्रीवस्य कुम्भस्य कुम्भकर्णस्य रक्षसः। विभीषणस्येन्द्रजितो गृहेऽन्येषां च रक्षसाम्।।४।।
नापश्यत्पानभूम्यादौ सीतां चिन्तापरायणः। अशोवाटिकां गत्वा दृष्टवान् शिंशपातले।।५।।
राक्षसीरक्षितां सीतां, भव भार्येतिवादिनम्। रावणं शिंशपास्थोऽथ नेति सीतां सुवादिनीम्।।६।।
भव भार्या रावणस्य राक्षसीर्वादिनीः कपिः। गते तु रावणे प्राह राजा दशरथोऽभवत्।।७।।
रामोऽस्य लक्ष्मणः पुत्रौ वनवासं गतौ वरौ। रामपत्नी जानकी त्वं रावणेन हृता बलात्।।८।।
रामः सुग्रीवमित्रस्त्वां मार्गयन्प्रैषयच्च माम्। साभिज्ञानं चाङ्गुलीयं रामदत्तं गृहाण वै।।९।।

अध्याय–९

सुन्दरकाण्ड की कथा

देवर्षि नारदजी ने कहा कि- सम्पाति की बात सुनकर हनुमान् और अङ्गद आदि वानरों ने समुद्र की तरफ देखा। तत्पश्चात् वे कहने लगे–' कौन समुद्र को लाँघकर समस्त वानरों को जीवन–दान देगा?' वानरों की जीवन–रक्षा और श्रीरामचन्द्रजी के कार्य की प्रकृष्ट सिद्धि के लिये पवन कुमार हनुमान्जी सौ योजन विस्तृत समुद्र को लाँघ गये। लाँघते समय अवलम्बन देने के लिये समुद्र से मैनाक पर्वत उठा। हनुमान्जी ने दृष्टि मात्र से उसका सत्कार किया। तत्पश्चात् छायाग्राहिणी. सिंहिका ने सिर उठाया। वह उनको अपना ग्रास बनाना चाहती थी, इसलिये. हनुमान्जी ने उसको मार गिराया। समुद्र के पार जाकर उन्होंने लङ्कापुरी देखी। राक्षसों के घरों में खोज की; दशानन रावण के अन्तः पुर में तथा कुम्भकर्ण, विभीषण, इन्द्रजित् तथा अन्य राक्षसों के गृहों में जा–जाकर तलाश की; मद्यपान के स्थानों आदि में भी चक्कर लगाया; किंतु कहीं भी सीता उनकी दृष्टि में नहीं पड़ी। अधुना वे बड़ी चिन्ता में पड़े। अन्त में जिस समय अशोक वाटिका की तरफ गये तो वहाँ शिंशपा–वृक्ष के नीचे सीताजी उनको बैठी दिखायी दीं। वहाँ राक्षसियाँ उनकी रख वाली कर रही थीं। हनुमान्जी शिंशपा–वृक्ष पर चढ़कर देखा। दशानन रावण सीताजी से कह रहा था– 'तू मेरी स्त्री हो जा'; किंतु वे स्पष्ट शब्दों में 'ना' कर रही थीं। वहाँ बैठी हुई राक्षसियाँ भी यही कहती थीं– 'तू दशानन रावण की स्त्री हो जा।' जिस समय दशानन रावण चला गया तो हनुमान्जी ने इस तरह कहना प्रारम्भ किया–'अयोध्या में दशरथ नाम वाले एक राजा थे। उनके दो पुत्र राम और लक्ष्मण वनवास के लिये गये। वे दोनों भाई श्रेष्ठ पुरुष हैं। उनमें श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी जनक कुमारी सीता तुम्हीं हो। दशानन रावण आपको बलपूर्वक हर ले आया है। श्रीरामचन्द्रजी इस समय वानराज सुग्रीव के मित्र हो गये हैं। उन्होंने आपकी खोज करने के लिये ही मुझको भेजा है। पहचान के लिये गूढ़ संदेश के साथ श्रीरामचन्द्रजी ने अँगूठी दी है। उनकी दी हुई यह अँगूठी ले लो'।।१–९।।

सीताङ्गुलीयं जग्राह सापश्यन्मारुतिं तरौ। भूयोऽग्रे चोपविष्टं तमुवाच यदि जीवति।।१०।।
रामः कथं न नयति शङ्कितामब्रवीत्कपिः।।११।।

हनुमानुवाच

रामः सीते न जानाति ज्ञात्वा त्वां स नयिष्यति। रावणं राक्षसं हत्वा सबलं देवि मा शुचः।।१२।।
साभिज्ञानं देहि मे त्वं मणिं सीताऽददात् कपौ। उवाच मां यथा रामो नयेच्छीघ्रं तथा कुरु।।१३।।
काकाक्षिपातनकथां प्रातर्याहि हि शोकहा। मणिं कथां गृहीत्वाऽऽह हनूमान्नेष्यते पतिः।।१४।।
अथवा ते त्वरा काचित्पृष्ठमारुह मे शुभे। अद्य त्वां दर्शयिष्यामि ससुग्रीवं च राघवम्।।१५।।
सीताऽब्रवीद्धनूमन्तं नयतां मां हि राघवः। हनूमान् स दशग्रीवदर्शनोपायमाकरोत्।।१६।।
वनं बभञ्ज तत्पालान्हत्वा दन्तनखादिभिः। हत्वा तु किङ्करान् सर्वान् सप्त मन्त्रिसुतानपि।।१७।।
पुत्रमक्षं कुमारं च शक्रजिच्च बबन्ध तम्। नागपाशेन पिङ्गाक्षं दर्शयामास रावणम्।।१८।।
उवाच रावणः 'कस्त्वं' मारुतिः प्राह रावणम्।।१९।।

हनुमान उवाच

रामदूतो राघवाय सीतां देहि मरिष्यसि। रामबाणैर्हतः सार्धं लङ्कास्थै राक्षसैर्ध्रुवम्।।२०।।
रावणो हन्तुमुद्युक्तो विभीषणनिवारितः। दीपयामास लाङ्गूलं दीप्तपुच्छः स मारुतिः।।२१।।

सीताजी ने अँगूठी ले ली। उन्होंने वृक्षपर बैठे हुए हनुमान्‌जी को देखा। तत्पश्चात् हनुमान्‌जी वृक्ष से उतरकर उनके सामने आ बैठे, तत्पश्चात् सीता ने उनसे कहा–'यदि श्रीरघुनाथजी जीवित हैं तो वे मुझको यहाँ से ले क्यों नहीं जाते?' इस तरह शङ्का करती हुई सीताजी से हनुमान्‌जी ने इस तरह कहा–' हे देवि सीते! आप यहाँ हो, यह बात श्रीरामचन्द्रजी नहीं जानते। मुझसे यह समाचार जान लेने के पश्चात् सेना सहित राक्षस दशानन रावण को मारकर वे आपको अवश्य ले जायँगे। आप चिन्ता न करो। मुझको कोई अपनी पहचान दो।' तत्पश्चात् सीताजी ने हनुमान्‌जी को अपनी चूड़ामणि उतारकर दे दी और कहा–'हे भैया! अधुना ऐसा उपाय करो, जिससे श्रीरघुनाथजी शीघ्र आकर मुझको यहाँ से ले चलें। उनको कौए की आँख नष्ट कर देने वाली घटना का स्मरण दिलाना; आज यहीं रहो. कल सबेरे चले जाना; आप मेरा शोक दूर करने वाले हो। तुम्हारे आने से मेरा दुःख बहुत कम हो गया है।' चूड़ामणि और काक वाली कथा को पहचान के रूप में लेकर हनुमान्‌जी ने कहा–'हे कल्याणि! तुम्हारे पतिदेव अधुना आपको शीघ्र ही ले जायँगे। अथवा यदि आपको चलने की जल्दी हो, तो मेरी पीठ पर बैठ जाओ। मैं आज ही आपको श्रीरामचन्द्रजी और सुग्रीव के दर्शन कराउँगा।' सीता बोलीं–'नहीं, श्रीरघुनाथजी ही आकर मुझको ले जायँ'।।१०-१५½।।

तत्पश्चात् हनुमान्‌जी ने दशानन रावण से मिलने की युक्ति सोच निकाली। उन्होंने रक्षकों को मारकर उस वाटिका को उजाड़ डाला। तत्पश्चात् दाँत और नख आदि आयुधों से वहाँ आये हुए दशानन रावण के समस्त सेवकों को मारकर सात मन्त्रि कुमारों तथा दशानन रावण पुत्र अक्षय कुमार को भी यमलोक पहुँचा दिया। तत्पश्चात् इन्द्रजित् ने आकर उनको नागपाश से बाँध लिया और उन वानर वीर को दशानन रावण के पास ले जाकर उससे मिलाया। उस समय दशानन रावण ने पूछा–'तू कौन है?' तत्पश्चात् हनुमान्‌जी दशानन रावण को उत्तर दिया–'मैं श्रीरामचन्द्र जी का दूत हूँ। आप श्रीसीताजी को श्रीरघुनाथजी की सेवा में लौटा दो; अन्यथा लङ्का निवासी समस्त राक्षसों के साथ आपको श्रीरामचन्द्रजी के बाणों से घायल होकर निश्चय ही मरना पड़ेगा।' यह सुनकर दशानन रावण हनुमान्‌जी को

दग्ध्वा लङ्कां राक्षसानां दृष्ट्वा सीतां प्रणम्य ताम्। समुद्रपारमागम्य दृष्टा सीतेति चाब्रवीत्।।२२।।
अङ्गदादीन्, अङ्गदाद्यैः पीत्वा मधुवने मधु। जित्वा दधिमुखादींश्च दृष्ट्वा रामं च तेऽब्रुवन्।।२३।।
दृष्टा सीतेति रामोऽपि हृष्टः पप्रच्छ मारुतिम्।।२४।।

श्रीराम उवाच

कथं दृष्टा त्वया सीता किमुवाच च मां प्रति। सीताकथामृतेनेव सिञ्च मां कामवह्निवगम्।।२५।।
हनूमानब्रवीद्रामं लङ्घयित्वाब्धिमागतः। सीतां दृष्ट्वा पुरीं दग्ध्वा सीतामणिं गृहाण वै।।२६।।
हत्वा तं रावणं सीतां प्राप्स्यसे राम मा शुचः। गृहीत्वा तं मणिं रामो रुरोद विरहातुरः।।२७।।
मणिं दृष्ट्वा जानकी मे दृष्टा, सीतां नयस्व माम्। तया विना न जीवामि, सुग्रीवाद्यैः प्रबोधितः।।२८।।
समुद्रतीरं गतवांस्तत्र रामं विभीषणः। गतस्तिरस्कृतो भ्रात्रा रावणेन दुरात्मना।।२९।।
रामाय देहि सीतां त्वमित्युक्तेनासहायवान्। रामो विभीषणं मित्रं लङ्कैश्वर्येऽभ्यषेचयत्।।३०।।
समुद्रं प्रार्थयन्मार्गं यदा नादात्तदा शरैः। भेदयामास, रामं च उवाचाब्धिः समागतः।।३१।।

समुद्र उवाच

नलेन सेतुं बद्ध्वाऽब्धौ लङ्कां व्रज गम्भीरकः। अहं त्वया कृतः पूर्वं रामोऽपि नलसेतुना।।३२।।

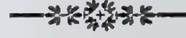
मारने के लिये उद्यत हो गया; किंतु विभीषण ने उसको रोक दिया। तत्पश्चात् दशानन रावण ने उनकी पूँछ में आग लगा दी। पूँछ जल उठी। यह देख पवनपुत्र हनुमान्‌जी ने राक्षसों की पुरी लङ्का को जला डाला और सीताजी का पुनः दर्शन करके उनको नमस्कार किया। तत्पश्चात् समुद्र के पार आकर अङ्गद आदि से कहा-'मैंने सीताजी का दर्शन कर लिया है।' तत्पश्चात् अङ्गद आदि के साथ सुग्रीव के मधुवन में आकर, दधिमुख आदि रक्षकों को पराजित करके, मधुपान करने के अनन्तर वे सभी लोग श्रीरामचन्द्रजी के पास आये और बोले-'सीताजी का दर्शन हो गया।' श्रीरामचन्द्रजी ने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर हनुमान्‌जी से पूछा-।।१६-२४।।

श्रीराम बोले-हे कपिवर! आपको सीता का दर्शन कैसे हुआ? उसने मेरे लिये क्या संदेश दिया है? मैं विरह की आग में जल रहा हूँ। आप सीता की अमृतमयी कथा सुनाकर मेरा संताप शान्त करो।।२५।।

देवर्षि नारदजी ने कहा कि-यह सुनकर हनुमान्‌जी ने रघुनाथजी से कहा-'हे भगवन्! मैं समुद्र लाँघकर लङ्का में गया था। वहाँ सीताजी का दर्शन करके, लङ्कापुरी को जलाकर यहाँ आ रहा हूँ। यह सीताजी की दी हुई चूड़ामणि लीजिये। आप शोक ना करें; दशानन रावण का वध करने के पश्चात् निश्चय ही आपको सीताजी की प्राप्ति होगी।' श्रीरामचन्द्रजी उस मणि को हाथ में ले, विरह से व्याकुल होकर रोने लगे और बोले-'इस मणि को देखकर ऐसा जान पड़ता है, मानो मैंने सीता को ही देख लिया। अधुना मुझको सीता के पास ले चलो; मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकता।' उस समय सुग्रीव आदि ने श्रीरामचन्द्रजी को समझा-बुझाकर शान्त किया। उसके बाद श्रीरघुनाथजी समुद्र के तट पर गये। वहाँ उनसे विभीषण आकर मिले। विभीषण के भाई दुरात्मा दशानन रावण ने उनका तिरस्कार किया था। विभीषण ने इतना ही कहा था कि 'हे भैया! आप सीता को श्रीरामचन्द्रजी की सेवा में समर्पित कर दीजिये।' अधुना वे असाहय थे। श्रीरामचन्द्रजी ने विभीषण को अपना मित्र बनाया और लङ्का के राजपद पर अभिषिक्त कर दिया। इसके बाद श्रीरामचन्द्रजी ने समुद्र से लङ्का जाने के लिये रास्ता माँगा। जिस समय उसने मार्ग नहीं दिया तो उन्होंने बाणों से उसको बींध डाला। अधुना समुद्र भयभीत होकर श्रीरामचन्द्रजी के पास आकर बोला-'हे भगवन्!

कृतेन तरुशैलाद्यैर्गतः पारं महोदधेः। वानरैः स सुवेलस्थः सह लङ्कां ददर्श वै।।३३।।

।।इत्यादिमहापुराणे भगवान् वेदव्यासकृत श्रीविष्णुवामपादस्वरूपे श्रीअग्निमहापुराणान्तर्गते रामायणे सुन्दरकाण्डे नवमोऽध्यायः।।९।।



अथ दशमोऽध्यायः

रामायणे युद्धकाण्डवर्णनम्

नारद उवाच

रामोक्तश्चाङ्गदो गत्वा रावणं प्राह जानकी। दीयतां राघवायाऽऽशु अन्यथा त्वं मरिष्यसि।।१।।
रावणो हन्तुमुद्युक्तः स आगाद्धतराक्षसः। रामायाऽऽह दशग्रीवो युद्धमेकं तु मन्यते।।२।।
रामो युद्धाय तच्छ्रुत्वा लङ्कां सकपिराययौ। वानरा हनुमान् मैन्दो द्विविदो जाम्ववान्नलः।।३।।
नीलस्तारोऽङ्गदो धूम्रो सुषेणः केसरी गजः। पनसो विनतो रम्भः शरभः कम्पनो बली।।४।।
गवाक्षो दधिवक्त्रश्च गवयो गन्धमादनः। एते चान्ये च सुग्रीव एतैर्युक्तो ह्यसङ्ख्यकैः।।५।।
रक्षसां वानराणां च युद्धं सङ्कुलमाबभौ। राक्षसा वानराञ्जघ्नुः शरशक्तिगदादिभिः।।६।।

नल के द्वारा मेरे उपर पुल बाँधकर आप लङ्का में जाइये। प्राचीन काल में आप ही ने मुझको गहरा बनाया था।' यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने नल के द्वारा वृक्ष और शिला खण्डों से एक पुल बँधवाया और उसी से वे वानरों सहित समुद्र के पार गये। वहाँ सुवेल पर्वत पर पड़ाव डाल कर वहीं से उन्होंने लङ्कापुरी का निरीक्षण किया।।२६-३३।।

।।इस प्रकार महापुराणों में श्रेष्ठ श्रीविष्णुवामपादस्वरूप कृष्णद्वैपायन भगवान् व्यासकृत अग्निमहापुराणान्तर्गत आगत विषयों का विवेचन सम्बन्धी नौवाँ अध्याय डॉ. सुरकान्त झा द्वारा सुसम्पन्न हुआ।।९।।



अध्याय-१०

युद्धकाण्ड की कथा

देवर्षि नारदजी ने कहा कि-तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी के आदेश से अङ्गद दशानन रावण के पास गये और बोले-'हे दशानन रावण! आप जनक कुमारी सीता को ले जाकर शीघ्र ही श्रीराचन्द्रजी को सौंप दो। अन्यथा मारे जाओगे।' यह सुनकर दशानन रावण उनको मारने को तैयार हो गया। अङ्गद राक्षसों को मार-पीटकर लौट आये और श्रीरामचन्द्रजी से बोले-'हे भगवन्! दशानन रावण केवल युद्ध करना चाहता है।' अङ्गद की बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने वानरों की सेना साथ ले युद्ध के लिये लङ्का में प्रवेश किया। हनुमान्, मैन्द, द्विविद, जाम्बवान्, नल, नील, तार, अङ्गद, धूम्र, सुषेण, केसरी, गज, पनस, विनत, रम्भ, शरभ, महाबली कम्पन, गवाक्ष, दधिमुख, गवय और गन्धमादन-ये सभी तो वहाँ आये ही, अन्य भी बहुत-से वानर आ पहुँचे। इन असंख्य वानरों सहित कपिराज सुग्रीव भी युद्ध के लिये उपस्थित थे। तत्पश्चात् तो राक्षसों और वानरों में घमासान युद्ध छिड़ गया। राक्षस वानरों को बाण, शक्ति और

वानरा राक्षसाञ्जघ्नुर्नखदन्तशिलादिभिः। हस्त्यश्वरथपादातं राक्षसानां बलं हतम्।।७।।
हनूमान् गिरिशृङ्गेण धूम्राक्षमवधीद्रिपुम्। अकम्पने प्रहस्तं च युध्यन्तं नील आवधीत्।।८।।
इन्द्रजिच्छरबन्धाच्च विमुक्तौ रामलक्ष्मणौ। तार्क्ष्यसन्दर्शनाद्बाणैर्जघ्नतू राक्षसं बलम्।।९।।
रामः शरैर्जर्जरितं रावणं चाकरोद्रणे। रावणः कुम्भकर्णं च बोधयामास दुःखितः।।१०।।
कुम्भकर्णः प्रबुद्धोऽथ पीत्वा घटसहस्रकम्। मद्यस्य महिषादीनां भक्षयित्वाऽऽह रावणम्।।११।।

कुम्भकर्ण उवाच

सीताया हरणं पापं कृतं त्वं हि गुरुर्यतः। अतो गच्छामि युद्धाय रामं हन्मि सवानरम्।।१२।।

नारद उवाच

इत्युक्त्वा वानरान् सर्वान् कुम्भकर्णो ममर्द ह। गृहीतस्तेन सुग्रीवः कर्णनासं चकर्त सः।।१३।।
कर्णनासाविहीनोऽसौ भक्षयामास वानरान्। रामोऽथ कुम्भकर्णस्य बाहू चिच्छेद सायकैः।।१४।।
ततः पादौ ततश्छित्वा शिरो भूमौ न्यपातयत्। अथ कुम्भो निकुम्भश्च मकराक्षश्च राक्षसः।।१५।।
महोदरमहापार्श्वौ मत्त उन्मत्तराक्षसः। प्रघसो भासकर्णश्च विरूपाक्षश्च सङ्गरे।।१६।।
देवान्तको नरान्तश्च त्रिशिराश्चातिकायकः। रामेण लक्ष्मणेनैते वानरैः सविभीषणैः।।१७।।

गदा आदि के द्वारा मारने लगे और वानर नख, दाँत एवं शिला आदि के द्वारा राक्षसों का विनाश करने लगे। राक्षसों की हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों से युक्त चतुरङ्गिणी सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गयी। हनुमान् ने पर्वत शिखर से अपने वैरी धूम्राक्ष का वध कर डाला। नील ने भी युद्ध के लिये सामने आये हुए अकम्पन और प्रहस्त को मौत के घाट उतार दिया।।१-८।।

श्रीराम और लक्ष्मण यद्यपि इन्द्रजित् के नागास्त्र से बँध गये थे, तथापि गरुड़ की दृष्टि पड़ते ही उससे मुक्त हो गये। तत्पश्चात् उन दोनों भाइयों ने बाणों से राक्षसी सेना का विनाश प्रारम्भ किया। श्रीरामचन्द्रजी ने दशानन रावण को युद्ध में अपने बाणों की मार से जर्जरित कर डाला। इससे दुःखित होकर दशानन रावण ने कुम्भकर्ण को सोते से जगाया। जागने पर कुम्भकर्ण ने हजार घड़े मदिरा पीकर कितने ही भैंस आदि पशुओं का भक्षण किया। तत्पश्चात् दशानन रावण से कुम्भकर्ण बोला-'सीता का हरण करके आपने पाप किया है। आप मेरे बड़े भाई हो, इसीलिये तुम्हारे कहने से युद्ध करने जाता हूँ। मैं वानरों सहित राम को मार डालूँगा'।।९-१२।।

ऐसा कहकर कुम्भकर्ण ने समस्त वानरों को कुचलना प्रारम्भ किया। एक बार उसने सुग्रीव को पकड़ लिया, तत्पश्चात् सुग्रीव ने उसकी नाक और कान काट लिये। नाक और कान से हीन होकर वह वानरों का भक्षण करने लगा। यह देख श्रीरामचन्द्रजी ने अपने बाणों से कुम्भकर्ण की दोनों पैर भुजाएँ काट डालीं। इसके बाद उसके दोनों पैर तथा मस्तक काटकर उसको पृथ्वी पर गिरा दिया। उसके बाद कुम्भ, निकुम्भ, राक्षस मकराक्ष, महोदर, महापार्श्व, मत्त, राक्षस श्रेष्ठ उन्मत्त, प्रघस, भासकर्ण, विरूपाक्ष, देवान्तक, नरान्तक, त्रिशिरा और अतिकाय युद्ध में कूद पड़े। तत्पश्चात् इनको तथा और भी बहुत-से युद्ध परायण राक्षसों को श्रीराम, लक्ष्मण, विभीषण एवं वानरों ने पृथ्वी पर सुला दिया। तत्पश्चात् इन्द्रजित् (मेघनाद) ने माया से युद्ध करते हुए वरदानं में प्राप्त हुए नागपाश द्वारा श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण को बाँध लिया। उस समय हनुमान्जी के द्वारा लाये हुए पर्वत पर उगी हुई 'विशल्या' नाम की औषधि से श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण के घाव अच्छे हुए। उनके शरीर से बाण निकाल दिये गये। हनुमान्जी पर्वत को जहाँ से लाये थे, वहीं उसको

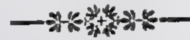
युध्यमानास्तथा त्वन्ये राक्षसा भुवि पातिताः। इन्द्रजिन्मायया युध्यन्रामादीन् स बबन्ध ह॥१८॥
वरदत्तैर्नागपाशैरोषध्या तौ विशल्यकौ। विशल्ययाऽव्रणौ कृत्वा मारुत्यानीतपर्वते॥१९॥
हनूमान्धारयामास तत्रागं यत्र संस्थितः। निकुम्भिलायां होमादि कुर्वन्तं तं हि लक्ष्मणः॥२०॥
शरैरिन्द्रजितं वीरं युद्धे तं तु व्यपातयत्। रावणः शोकसन्तप्तः सीतां हन्तुं समुद्यतः॥२१॥
अविन्ध्यवारितो राजा रथस्थः सबलो ययौ। इन्द्रोक्तो मातली रामं रथस्थं प्रचकार तम्॥२२॥
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव। रावणो वानरान्हन्ति मारुत्याद्याश्च रावणम्॥२३॥
रामः शस्त्रैस्तमस्त्रैश्च ववर्ष जलदो यथा। तस्य ध्वजं स चिच्छेद रथमश्वांश्च सारथिम्॥२४॥
धनुर्बाहूञ्शिरांस्येव उत्तिष्ठन्ति शिरांसि हि। पैतामहेन हृदयं भित्त्वा रामेण रावणः॥२५॥
भूतले पातितः सर्वै राक्षसै रुरुदुः स्त्रियः। आश्वास्य तं च संस्कृत्य रामाज्ञप्तो विभीषणः॥२६॥
हनूमताऽऽनयद्रामः सीतां शुद्धां गृहीतवान्। रामो वह्नौ प्रविष्टां तां शुद्धामिन्द्रादिभिः स्तुतः॥२७॥
ब्रह्मणा दशरथेन त्वं विष्णूं राक्षसमर्दनः। इन्द्रोऽर्थितोऽमृतवृष्ट्या जीवयामास वानरान्॥२८॥
रामेण पूजिता जग्मुर्युद्धं दृष्ट्वा दिवं च ते। रामो विभीषणायादाल्लङ्कामभ्यर्च्य वानरान्॥२९॥
ससीतः पुष्पके स्थित्वा गतमार्गेण वै गतः। दर्शयन् वनदुर्गाणि सीतायै हृष्टमानसः॥३०॥

पुनः रख आये। इधर मेघनाद निकुम्भिला देवी के मन्दिर में हवन आदि करने लगा। उस समय लक्ष्मण ने अपने बाणों से इन्द्र को भी पराजित कर देने वाले उस वीर को युद्ध में मार गिराया। पुत्र की मृत्यु का समाचार पाकर दशानन रावण शोक से संतप्त हो उठा और सीता को मार डालने के लिये उद्यत हो उठा; किंतु अविन्ध्य के मना करने से वह मान गया और रथपर बैठकर सेनासहित युद्ध भूमि में गया। तत्पश्चात् इन्द्र के आदेश से मातलि ने आकर श्रीरघनाथजी को भी देवराज इन्द्र के रथ पर बिठाया॥१३-२२॥

श्रीराम और दशानन रावण का युद्ध श्रीरामचन्द्रजी और दशानन रावण के युद्ध के समान ही था-उसकी कहीं भी दूसरी कोई उपमा नहीं थी। दशानन रावण वानरों पर प्रहार करता था और हनुमान् आदि वानर दशानन रावण को चोट पहुँचाते थे। जिस प्रकार मेघ पानी बरसाता है, उसी तरह श्रीरघुनाथजी ने दशानन रावण के उपर अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा प्रारम्भ कर दी। उन्होंने दशानन रावण के रथ, ध्वज, अश्व, सारथि, धनुष, बाहु और मस्तक काट डाले। काटे हुए मस्तकों के स्थान पर दूसरे नये मस्तक उत्पन्न हो जाते थे। यह देखकर श्रीरामचन्द्रजी ने ब्रह्मास्त्र के द्वारा दशानन रावण का वक्षःस्थल विदीर्ण करके उसको युद्धक्षेत्र में गिरा दिया। उस समय मरने से बचे हुए सभी राक्षसों के साथ दशानन रावण की अनाथा स्त्रियाँ विलाप करने लगीं। तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से विभीषण ने उन सभी को सान्त्वना दे, दशानन रावण के शव का दाह-संस्कार किया। उसके बाद श्रीरामचन्द्रजी ने हनुमान्जी के द्वारा सीताजी को बुलवाया। यद्यपि वे स्वरूप से ही नित्य शुद्ध थीं, तो भी उन्होंने अग्नि में प्रवेश करके अपनी विशुद्धता का परिचय दिया। तत्पश्चात् रघुनाथजी ने उनको स्वीकार किया। इसके बाद इन्द्रादि देवताओं ने उनका स्तवन किया। तत्पश्चात् ब्रह्माजी तथा स्वर्गवासी महाराज दशरथ ने आकर स्तुति करते हुए कहा-'हे श्रीराम! आप राक्षसों का विनाश करने वाले साक्षात् भगवान् श्रीहरि विष्णु हो।' तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी के अनुरोध से इन्द्र ने अमृत बरसाकर मरे हुए वानरों को जीवित कर दिया। समस्त देवता युद्ध देखकर, श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा पूजित हो, स्वर्गलोक में चले गये। श्रीरामचन्द्रजी ने लङ्का का राज्य विभीषण को दे दिया और वानरों का विशेष सम्मान किया॥२३-२९॥ तत्पश्चात् सभी

भरद्वाजं नमस्कृत्य नन्दिग्रामं समागतः। भरतेन नतश्चागादयोध्यां तत्र संस्थितः।।३१।।
वसिष्ठादीन्नमस्कृत्य कौशल्यां चैव कैकयीम्। सुमित्रां प्राप्तराज्योऽथ द्विजादीन् सोऽभ्यपूजयत्।।३२।।
वासुदेवं स्वात्मानमश्वमेधैरथायजत्। सर्वदानानि स ददौ पालयामास स प्रताः।।३३।।
पुत्रवद्धर्मकामादीन् दुष्टनिग्रहणे रतः। सर्वो धर्मपरो लोकः सर्वसस्या च मेदिनी।।३४।।
नाकालमरणं चासीद्रामे राज्यं प्रशासति।।३५।।

।।इत्यादिमहापुराणे भगवान् वेदव्यासकृत श्रीविष्णुवामपादस्वरूपे श्रीअग्निमहापुराणान्तर्गते रामायणे युद्धकाण्डे दशमोऽध्यायः।।१०।।



को साथ ले, सीतासहित पुष्पक विमान पर बैठकर श्रीरामचन्द्रजी जिस मार्ग से आये थे, उसी से लौट चले। मार्ग में वे सीता को प्रसन्नचित होकर वनों और दुर्गम स्थानों को दिखाते जा रहे थे। प्रयाग में महर्षि भरद्वाज को नमस्कार करके वे अयोध्या के पास नन्दिग्राम में आये। वहाँ भरत ने उनके चरणों में नमस्कार किया। तत्पश्चात् वे अयोध्या में आकर वहीं रहने लगे। सबसे पहले उन्होंने महर्षि वसिष्ठ आदि को नमस्कार करके क्रमशः कौसल्या, कैकयी और सुमित्रा के चरणों में मस्तक झुकाया। तत्पश्चात् राज्य-ग्रहण करके ब्राह्मणों आदि का पूजन किया। अश्वमेध-यज्ञ करके उन्होंने अपने आत्मस्वरूप श्रीवासुदेव का यजन किया, सभी तरह के दान दिये और प्रजाजनों का पुत्रवत् पालन करने लगे। उन्होंने धर्म और कामादि का भी सेवन किया तथा वे दुष्टों को सदा दण्ड देते रहना उचित समझा। उनके राज्य में सभी लोग धर्मपरायण थे तथा पृथ्वीपर सभी तरह की खेती फल-फूली रहती थी। श्रीरघुनाथजी के शासनकाल में किसी की अकालमृत्यु भी नहीं होती थी।।३०-३५।।

।।इस प्रकार महापुराणों में श्रेष्ठ श्रीविष्णुवामपादस्वरूप कृष्णद्वैपायन भगवान् व्यासकृत अग्निमहापुराणान्तर्गत आगत विषयों का विवेचन सम्बन्धी दसवाँ अध्याय डॉ. सुरकान्त झा द्वारा सुसम्पन्न हुआ।।१०।।



अथैकादशोऽध्यायः

रामायण-उत्तरकाण्डम्

नारद उवाच

राज्यस्थं राघवं जग्मुरगस्त्याद्याः सुपूजिताः।।१।।

ऋषय ऊचुः

धन्यस्त्वं विजयी यस्मादिन्द्रजिद्विनिपातितः। ब्रह्मात्मजः पुलस्त्योऽभूद्विश्रवास्तस्य कैकसी।।२।।
पुष्पोत्कटाऽभूत्प्रथमा तत्पुत्रोऽभूद्धनेश्वरः। कैकस्यां रावणो जज्ञे विंशद्बाहूर्दशाननः।।३।।
तपसा ब्रह्मदत्तेन वरेण जितदैवतः। कुम्भकर्णः सनिद्रोऽभूद्धर्मिष्ठोऽभूद्विभीषणः।।४।।
स्वसा शूर्पणखा तेषां रावणान्मेघनादकः। इन्द्रं जित्वेन्द्रजिच्चाभूद्रावणादधिको बली।
हतस्त्वया लक्ष्मणेन देवादेः क्षेममिच्छता।।५।।

नारद उवाच

इत्युक्त्वा ते गता विप्रा अगस्त्याद्या नमस्कृताः। देवप्रार्थितरामोक्तः शत्रुघ्नो लवणार्दनः।।६।।
अभूत्पूर्मथुरा काचिद्रामोक्तो भरतोऽवधीत्। कोटित्रयं च शैलूषपुत्राणां निशितैः शरैः।।७।।
शैलूषं दृप्तगन्धर्वं सिन्धुतीरनिवासिनम्। तक्षं च पुष्करं पुत्रं स्थापयित्वाऽथ देशयोः।।८।।

अध्याय-११

उत्तरकाण्ड की कथा

देवर्षि नारदजी ने कहा कि-जिस समय रघुनाथजी अयोध्या के राजसिंहासन पर आसीन हो गये, तत्पश्चात् अगस्त्य आदि महर्षि उनका दशर्न करने के लिये गये। वहाँ उनका भलीभाँति स्वागत-सत्कार हुआ। उसके बाद उन ऋषियों ने कहा-'हे भगवन्! आप धन्य हैं, जो लङ्का में विजयी हुए और इन्द्रजित्-जिस प्रकार राक्षसों को मार गिराया।डअधुना हम उनकी उत्पत्ति-कथा बतलाते है, सुनिये-. ब्रह्माजी के पुत्र मुनिवर पुलस्त्य हुए और पुलस्त्य से महर्षि विश्रवा का जन्म हुआ। उनकी दो पत्नियाँ थीं-पुण्योत्कटा और कैकसी। उनमें पुण्योत्कटा ज्येष्ठ थी। उसके गर्भ से धनाध्यक्ष कुबेर का जन्म हुआ, जिसके दस मुख और ब्रह्माजी ने उसको वरदान दिया, जिससे उसने समस्त देवताओं को जीत लिया। कैकसी के दूसरे पुत्र का नाम कुम्भकर्ण और तीसरे का विभीषण था। कुम्भकर्ण सदा नहीं में पड़े रहता था; किंतु विभीषण बड़े धर्मात्मा हुए। इन तीनों की बहन शूर्पणखा हुई। दशानन रावण से मेघनाद का जन्म हुआ। उसने इन्द्र को जीत लिया था, इसलिये 'इन्द्रजित्' के नाम से उसकी प्रसिद्धि हुई। वह दशानन रावण से भी अधिक बलवान् था। परंतु देवताओं आदि के कल्याण की इच्छा रखने वाले आपने लक्ष्मण के द्वारा उसका वध करा दिया।' ऐसा कहकर वे अगस्त्य आदि ब्रह्मर्षि श्रीरघुनाथजी के द्वारा अभिनन्दित हो अपने-अपने आश्रम को चले गये। उसके बाद देवताओं की याचना से प्रभावित श्रीरामचन्द्रजी के आदेश से शत्रुघ्न ने लवणासुर को मारकर एक पुरी बसायी, जो 'मथुरा' नाम से प्रसिद्ध हुई। तत्पश्चात् भरत ने श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर सिन्धु-तीर-निवासी शैलूष नामक

भरतोऽगात्सशत्रुघ्नो राघवं पूजयन् स्थितः। रामो दुष्टान्निहत्याजौ शिष्टान्सम्पाल्य मानवः।।९।।
पुत्रौ कुशलवौ जातौ वाल्मीकेराश्रमे वरौ। लोकापवादात्त्यक्तायां ज्ञातौ सुचरितश्रवात्।।१०।।
राज्येऽभिषिच्य ब्रह्माऽहमस्मीति ध्यानतत्परः। दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च।।११।।
राज्यं कृत्वा क्रतून् स्वर्गं देवार्थितो ययौ। सपौरः सानुजः, सीतापुत्रो जनपदान्वितः।।१२।।

अग्निरुवाच

वाल्मीकिर्नारदाच्छ्रुत्वा रामायणमकारयत्। सविस्तरं य एतच्च शृणुयात्स दिवं व्रजेत्।।१३।।

।।इत्यादिमहापुराणे भगवान् वेदव्यासकृत श्रीविष्णुवामपादस्वरूपे श्रीअग्निमहापुराणान्तर्गते रामायण उत्तरकाण्ड एकादशोऽध्यायः।।११।।



बलोन्मत्त गन्धर्व का तथा उसके तीन करोड़ वंशजों का अपने तीखे बाणों से विनाश किया। तत्पश्चात् उस देश के गान्धार और मद्र दो विभाग करके, उनमें अपने पुत्र तक्ष और पुष्कर को स्थापित कर दिया।।१-९।।

इसके बाद भरत और शत्रुघ्न अयोध्या में चले आये और वहाँ श्रीरघुनाथजी की अराधना करते हुए रहने लगे। श्रीरामचन्द्रजी ने दुष्ट पुरूषों का युद्ध में विनाश किया और शिष्ट पुरूषों का दान आदि के द्वारा भलीभाँति पालन किया। उन्होंने लोकापवाद के भय से अपनी धर्मपत्नी सीता को वन में छोड़ दिया था। वहाँ वाल्मीकि मुनि के आश्रम में उनके गर्भ से दो श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम कुश और लव थे। उनके श्रेष्ठतम चरित्रों को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी को भलीभाँति निश्चय हो गया कि ये मेरे ही पुत्र हैं। तत्पश्चात् उन दोनों को कोसल के दो राज्यों पर अभिषिक्त करके, 'मैं ब्रह्म हूँ' इसकी भावनापूर्वक ध्यानयोग में स्थित होकर उन्होंने देवताओं की याचना से भाइयों और पुरवासियों सहित अपने परमधाम में प्रवेश किया। अयोध्या में ग्यारह हजार वर्षों तक राज्य करके वे अनेक यज्ञों का अनुष्ठान कर चुके थे। उनके बाद सीता के पुत्र कोसल जनपद के राजा हुए।।१०-१३।।

श्रीअग्नि देव ने कहा कि-हे ब्रह्मर्षि वसिष्ठ! देवर्षि नारद से यह कथा सुनकर महर्षि वाल्मीकि ने विस्तारपूर्वक रामायण नामक महाकाव्य की रचना की। जो इस प्रसङ्ग को सुनता है, वह स्वर्गलोक को जाता है।।१४।।

।।इस प्रकार महापुराणों में श्रेष्ठ श्रीविष्णुवामपादस्वरूप कृष्णद्वैपायन भगवान् व्यासकृत अग्निमहापुराणान्तर्गत आगत विषयों का विवेचन सम्बन्धी ग्यारहवाँ अध्याय डॉ. सुरकान्त झा द्वारा सुसम्पन्न हुआ।।११।।

